□ श्री सूरजचन्द शाह 'सत्यप्रेमी' (डांगीजी)
[जैनदर्शन के प्रखर विद्वान व चिन्तक वक्ता]

दो अक्षर का 'जिन' शब्द अपने भीतर कितना अर्थ-गांभीर्य समेटे हुए है कि आत्म-विकास की प्रथम सीढ़ी से शिखर तक की सम्पूर्ण यात्रा इसमें परिव्याप्त है। सरस और भाव-प्रधान विवेचन किया है—मनीषी श्री डांगीजी ने।

जिन-शासन का हार्द

□

जीव का शिव, नर का नारायण, आत्मा का परमात्मा और ईश्वर का परमेश्वर बनाना ही जिन-शासन का हार्द है। 'जन' का 'जिन' कैसे होता है ? इसे समझें—'जन' शब्द पर ज्ञान और दर्शन की दो मात्राएँ चढ़ जायँ तो वह 'जैन' है और चारित्र की 'इ' शक्ति प्राप्त हो जाय तो 'जिन'। पहले मिथ्यात्व का प्रत्याख्यान होता है अर्थात् उल्टी समझ का त्याग किया जाता है। फिर जितना-जितना संयम या चारित्र्य का परिवर्द्धन होता है उतना-उतना 'जिन' कहलाता है अर्थात् जितना-जितना 'अव्रत' का त्याग होता है उतना-उतना 'जिन' होता है। प्रमाद का त्याग होते ही वह उत्कृष्ट 'जिन' है। कषाय का त्याग होते ही उत्कृष्टतर 'जिन' है और अशुभ योग का त्याग करते ही उत्कृष्टतम 'जिन'। इस प्रकार अपने "सिद्धि गइ नामधेयं" सिद्ध स्थिति नाम वाले ठिकाने पर पहुँचते ही वह सम्पूर्ण 'जिन' कहलाता है। जितना-जितना जीना उतना-उतना 'जिन' होता गया। जब सम्पूर्ण 'जिन' हो गया उसे सिद्ध कहते हैं। उसी के शासन को सिद्धानुशासन यानी जिन-शासन कहते हैं। सम्पूर्ण लोक पर छत्र के समान वे विराजमान हैं इसी कारण लोकस्थिति है। उस शासन को चलाने के लिये क्षत्रियोत्तम तीर्थंकर तीर्थ की स्थापना करते हैं। उन्हीं के अनुशासन में गणधर भगवान 'गण' तंत्र का निर्माण करते हैं। उसी के अनुसार आचार्य देव 'गच्छों' का संचालन करते हैं। स्वयं जिन-शासन में चलते हैं और हम सबको चलाते हैं। 'सम्प्रदाय' समत्व प्रदान करने के लिये स्थापित होते हैं। ममता को दूर करते हैं इसीलिये 'मम्+गल'=मङ्गल कहलाते हैं। जो किसी ममता में रहते हैं वे सम्प्रदायों की मर्यादाएँ भंग करते हैं। पतित होते हैं और भ्रष्ट होकर जन मानस को गन्दा करते हैं। जिस प्रकार जाति-सम्पन्नता 'पुण्य' का लक्षण है और जाति-मद 'पाप' का लक्षण है उसी प्रकार सम्प्रदाय-सम्पन्नता 'तप' का लक्षण है और तप का मद 'पाप' का लक्षण है। कुल-ऐश्वर्य और रूप-सम्पन्नता 'पुण्य' का लक्षण है और उनका मद 'पाप' का लक्षण है। 'कु-भाव' को पाप कहते हैं और 'सु-भाव' को पुण्य कहते हैं। इसी कारण तीर्थंकर प्रभु का उत्तम प्रभाव होता है। 'प्रभाव' को जीव का स्वभाव और अजीव का 'परभाव' समझना 'मिथ्यात्व' है। वह अलग भाव है जो तीर्थंकर के प्रशस्त भाव का तत्त्व है। जो 'सिद्ध-जिन' के स्वभाव की ओर बढ़ाता है। 'मम-भाव' को ही आस्रव तत्त्व कहा है। 'सम-भाव' को ही 'संवर तत्त्व' कहा है जो आचार्य देव का भाव है। 'शुद्ध भाव' को ही 'निर्जरा तत्त्व' कहा है जो उपाध्याय का 'वाङ्मय विग्रह' है। मोक्ष सिद्धि का भाव परम भाव है जो संसार के बंधनरूप विभाव को दूर कर सकता है। यह 'सर्व साधु' का उत्कृष्टतम भाव है। उसी की आराधना करना साधु मार्ग है जो सिद्धानुशासन जिन-शासन का 'हार्द' कहलाता है। इससे इधर-उधर हो जाना 'भटकना' है। यही 'मिथ्यात्व-मोह' है। मध्य में 'लटकना' मिश्र मोह है और सम्यक्त्व में 'अटक' जाना और चारित्र्य की आवश्यकता नहीं समझना 'सम्यक्त्व मोह' है। सत्त्व का अहं है जो 'दर्शन-मोह' कहलाता है। अनन्तानुबंधी कषाय को नष्ट करना हो तो यह दर्शन-मोह 'खटकना' चाहिए। तब सम्यग्दर्शन का प्रकाश होता है। यही 'सुदर्शन चक्र' है। यही 'तीसरा नेत्र' है, जिसके बिना 'ब्रह्म-साक्षात्कार' या परम शांति का दर्शन ही असम्भव है तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

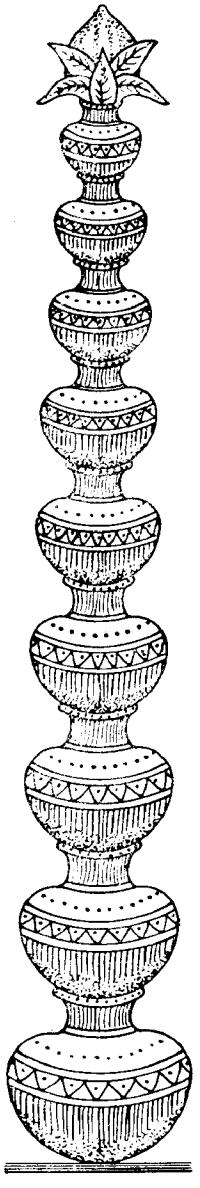

वहाँ तक पहुँचना कैसे हो ? 'हिया-फूटा' व्यवहार भी ठीक-ठीक नहीं निभा सकता तो निश्चय परमार्थ रूप जिन-शासन में कैसे विकास कर सकता है।

आत्म साक्षात्कार या सम्यग्दर्शन होने के बाद ही हम 'चटक-मटक' को छोड़ते हैं। बाहरी चटक में भटकते रहते हैं। अकड़ की पकड़ में जकड़े हैं। 'अव्रत' का प्रत्याख्यान प्रारम्भ किया कि चटक-मटक छूटी और जब वैषयिक द्वन्द्वों से छटक जाते हैं तब 'प्रमाद' को छोड़कर अशुभ योग की प्रवृत्ति से दूर रहते हैं। शुभ योग भी निवृत्त होता है तब, निर्वाण, मुक्ति, सिद्धि और सम्पूर्ण जिन-शासन का लक्ष्य सम्पन्न होता है। पक्षी का पक्ष-पात हो गया कि उड़ना 'बंद' उसी प्रकार संन्यासी, त्यागी, साधु-यति और सत्पुरुष-सती व्यवहार या निश्चय दोनों में से किसी एक पक्ष को छोड़ देता है तो पतित हो जाता है और अपने स्थान पर नहीं पहुँच सकता। अगर आपको जिन-शासन का 'हार्द' समझना हो तो इन बारह पंक्तियों का मननपूर्वक अनुप्रेक्षण करें, द्वादशांगरूप जिनवाणी का रहस्य हृदयंगम हो जायगा। यह 'तत्त्व-तात्पर्यामृत' महाग्रन्थ का एक छोटा सा 'अंश' है—

पक्षपात ज्यों ही हुआ, रुकी द्वि-जन्मा दौड़।
उभय पक्ष पक्षी उड़े, पहुँचे अपनी ठौड़॥
पहुँचे अपनी ठौड़ तपश्चारित्र्य से।
ज्ञान सुदर्शन नयन परम पावित्र्य से॥
'अटकन' 'भटकन-लटकन' छोड़ सिधायगा।
'सूर्य चन्द्र' 'खटकन' से प्रभुपद पायगा॥
'चटक-मटक' को छोड़कर 'झटक' मोह अज्ञान।
प्राप्त वीर्य सुख भोग सब निर्मल निश्छल ज्ञान॥
निर्मल निश्चल ध्यान वेदना दूर हो।
'शम' जीवन सौन्दर्य मधुर भरपूर हो॥
'सूर्य-चन्द्र' तन का भी मटका पटका जा।
'गटक' स्वयंभू स्वरस द्वन्द्व से छटक जा॥

तन का मटका धर्मध्यान, शुक्लध्यान द्वारा पटककर द्वन्द्व से छटक जाना और निरन्तर स्वयंभू स्वरस का भोगोपभोग करते रहना ही 'जिन-शासन' का 'हार्द' है। भोगोपभोग की अन्तराय दूर करना ही ध्येय है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग को भी दूर करना है पर भोगोपभोग की उपलब्धि ही सिद्धि है।

'सल्लं कामा विष कामा'

काम भोग शल्य रूप विष है, परन्तु स्वयंभू स्वरस का भोगोपभोग ध्येय है। पुण्य का फल 'साता', पाप का फल 'असाता'। आस्रव का फल 'दुःख', 'संवर' का फल 'सुख'। निर्जरा का फल 'शांति' और 'मोक्ष' का फल सिद्धि है। सभी तत्त्वों का भिन्न-भिन्न फल है। जीव तत्त्व का दर्शन कर अजीव तत्व का ज्ञान करके सभी तत्त्वों के उत्तम फल को यथार्थ विधि से प्राप्त करना ही जिन-शासन का 'हार्द' है। अर्हंत के पुण्य तत्त्व का उपकार, सिद्ध के जीव तत्त्व का आधार, आचार्य के संवर तत्व का आचार, उपाध्याय के निर्जरा तत्त्व का विचार, सर्वसाधु के मोक्ष तत्त्व का संस्कार ही जीवन का उद्धार है। जिन-शासन का सार है। सम्यग्दृष्टि के व्यवहार से अजीव तत्त्व को छोड़ो, सम्यग्ज्ञानी के सुधार से पाप तत्त्व का नाश करो। सम्यक्चारित्र के विहार से आस्रव रोको और सम्यक्तप के स्वीकार से बंध तोड़ो। तभी—

ऐसो पंचनमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं इवइ मंगलम्॥

क्रमशः आनन्द, मंगल, सुख-चैन और शांति होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org